International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 8 Issue 1, January 2018,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

प्राचीन कालीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति

डॉ०प्रीतम कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
प्राचीन इतिहास विभाग
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ज्ञानपुर,भदोही।

सारांश

यह शोध पत्र प्राचीन कालीन भारतीय समाज में स्त्रियों की सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक और राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण करता है। इतिहास के विभिन्न कालखंडों — विशेषकर वैदिक, उत्तरवैदिक, बौद्ध, मौर्य और गुप्त काल — में स्त्रियों की भूमिका और अधिकारों में क्रमिक परिवर्तन हुए, जिनका यह अध्ययन गहराई से परीक्षण करता है। वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत सशक्त और सम्मानजनक थी। वे वेदाध्ययन कर सकती थीं, यज्ञों में भाग लेती थीं, और समाज में विदुषी के रूप में जानी जाती थीं। गार्गी और मैत्रेयी जैसी महिलाओं का उदाहरण वैदिक युग की प्रगतिशील सोच को दर्शाता है। उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई। शिक्षा और धार्मिक क्रियाकलापों से उन्हें धीरे-धीरे वंचित किया गया। इस काल में बाल विवाह, पर्दा प्रथा और सती जैसी परंपराओं का आरंभ हुआ। समाज अधिक पितृसत्तात्मक होता गया। बौद्ध और जैन काल ने कुछ हद तक स्त्रियों को धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में स्थान प्रदान किया। भिक्षुणी संघ और साध्वी परंपरा ने उन्हें एक नई पहचान दी, हालांकि वे पुरुषों के अधीन ही रहीं। मौर्य और गुप्त काल में स्त्रियाँ सामाजिक और राजनीतिक रूप से अधिक सीमित हो गईं। ब्राह्मणवादी परंपराओं के प्रभाव से उनकी स्वतंत्रता और शिक्षा में बाधा आई।

मुख्य शब्द: प्राचीन भारत, स्त्री की स्थिति, वैदिक काल , पितृसत्ता ,नारी शिक्षा , सामाजिक परिवर्तन

परिचय

भारतीय सभ्यता का इतिहास अत्यंत प्राचीन, विविधतापूर्ण और समृद्ध है। इस दीर्घकालीन ऐतिहासिक विकासक्रम में स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। एक ओर जहाँ वैदिक युग में नारी को ज्ञान, धर्म और संस्कृति का वाहक माना गया, वहीं समय के साथ उसकी स्थिति में गिरावट आती गई और वह सामाजिक एवं धार्मिक बंधनों में जकड़ती चली गई। यह विरोधाभास भारतीय समाज के विकास और उसमें स्त्रियों की स्थिति को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलू है।[i]

प्राचीन भारत में स्त्रियाँ केवल परिवार की सदस्य नहीं थीं, बल्कि वे समाज की नैतिकता, शिक्षा, सांस्कृतिक परंपराओं तथा धार्मिक मूल्यों की संरक्षक भी थीं। वैदिक युग के ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि उस समय स्त्रियाँ वेदों का अध्ययन करती थीं, यज्ञों में भाग लेती थीं, और विद्वानों की संगति में दर्शन और तत्वज्ञान पर चर्चा करती थीं। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी स्त्रियाँ न केवल विदुषी थीं, बल्कि उन्होंने धार्मिक ग्रंथों में सक्रिय योगदान भी दिया। इससे स्पष्ट होता है कि प्रारंभिक वैदिक समाज स्त्रियों के प्रति सम्मान और समानता की भावना रखता था।

किन्तु वैदिक काल के पश्चात उत्तरवैदिक काल में सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के कारण स्त्रियों की स्थिति में गिरावट देखी गई। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रबल होने से स्त्रियों को शिक्षा, संपत्ति और स्वतंत्र निर्णय लेने के अधिकारों से वंचित किया जाने लगा। बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा और बहु विवाह जैसी कुप्रथाएँ प्रचलन में आईं, जिनसे स्त्रियाँ सामाजिक और मानसिक रूप से बंधनों में जकड़ गईं।[ii]

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 8 Issue 1, January 2018,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

बौद्ध और जैन धर्मों के आगमन के साथ स्त्रियों को कुछ हद तक धार्मिक और सामाजिक अधिकार पुनः प्राप्त हुए। भगवान बुद्ध द्वारा भिक्षुणी संघ की स्थापना और महावीर द्वारा स्त्रियों को साध्वी बनने की अनुमति देना इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास थे। फिर भी ये सुधार सीमित और पुरुष-सत्तात्मक सोच से प्रभावित थे।[iii]

मौर्य और गुप्त कालों में स्त्रियों की स्थिति पुनः संकुचित होती चली गई। एक ओर कुछ स्त्रियाँ प्रशासन और गुप्तचर व्यवस्था में कार्यरत थीं, वहीं अधिकांश स्त्रियाँ घरेलू कार्यों और धार्मिक कर्तव्यों तक सीमित कर दी गईं। गुप्तकाल में ब्राह्मणवादी प्रभाव के कारण स्त्रियों की स्वतंत्रता और शिक्षा पर और भी अधिक अंकुश लगा।

प्राचीन काल से लेकर विभिन्न समयों तक भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति कैसे बदलती गई, इसे समझना जरूरी है। समाज, धर्म और राजनीति में हुए बदलावों ने महिलाओं के अधिकारों और उनके सामाजिक स्थान को बहुत प्रभावित किया है। इस अध्ययन से आज के समय में महिलाओं से जुड़े मुद्दों को इतिहास की नजर से समझने में मदद मिलती है।[iv]

वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति

वैदिक काल (लगभग 1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक) भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण समय था। इस युग में समाज की संरचना, धार्मिक विश्वास और संस्कृति के नियम धीरे-धीरे विकसित हो रहे थे। इसी दौर में महिलाओं की स्थिति कैसी थी, इसे समझना आज के लिए भी खास महत्व रखता है क्योंकि उस समय की सोच और सामाजिक मान्यताएँ हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवहारों की जड़ें हैं।

सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि वैदिक काल में महिलाओं को समाज में विशेष सम्मान मिलता था। वे केवल परिवार की सदस्य नहीं थीं, बल्कि शिक्षा ग्रहण करने, धार्मिक कर्मकांडों में भाग लेने और सामाजिक जीवन में सक्रिय होने का अधिकार रखती थीं। वैदिक समाज में महिलाओं को विदुषी यानी विद्वान के रूप में स्वीकार किया जाता था। ऋग्वेद जैसे ग्रंथों में गार्गी, मैत्रेयी और लोपामुद्रा जैसी महान स्त्रियों का उल्लेख मिलता है, जो वेदों के गूढ़ प्रश्नों पर पुरुष विद्वानों से बहस करती थीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं को ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में भी बराबरी का दर्जा प्राप्त था।

वैदिक समाज में स्त्रियों की शिक्षा को अत्यंत महत्त्व दिया जाता था। वेदों की शिक्षा न केवल पुरुषों तक सीमित थी, बल्कि महिलाओं को भी शिक्षा का अधिकार था। वे श्लोक, मंत्र और ज्ञान की प्राप्ति में पुरुषों के साथ कदम से कदम मिला कर चलती थीं। वेदों के अध्ययन और धार्मिक यज्ञों में महिलाओं की भागीदारी उनकी स्वतंत्रता और सम्मान का परिचायक थी। महिलाओं को उपनयन संस्कार भी दिया जाता था, जो शिक्षा ग्रहण करने के लिए जरूरी माना जाता था।[v]

वैवाहिक जीवन के संदर्भ में भी वैदिक काल में स्त्रियों को पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। उस समय विवाह के कई प्रकार प्रचलित थे, जिनमें से 'स्वयंवर' का उल्लेख मिलता है। स्वयंवर का अर्थ है कि महिला स्वयं अपने पति का चुनाव करती थी। यह महिला की स्वतंत्रता और अधिकार की एक बड़ी मिसाल है। विवाह के संबंध में स्त्रियों को पूरी आजादी और सम्मान दिया जाता था। इसके साथ ही, वैदिक समाज में पति-पत्नी के संबंध में भी सौहार्द और समानता पर बल दिया गया।[vi]

धार्मिक और सामाजिक जीवन में स्त्रियों की भूमिका भी विशेष थी। वे यज्ञों में सहधर्मिणी के रूप में हिस्सा लेती थीं। उनके लिए धार्मिक कर्मकांडों में भाग लेना सम्मान की बात थी। इसके अलावा, वैदिक साहित्य में स्त्रियों के लिए सौंदर्य, सदाचार और गुणों की प्रशंसा भी मिलती है। उनके नैतिक मूल्य और व्यवहार समाज के लिए आदर्श माने जाते थे।

साथ ही, स्त्रियों की स्थिति वैदिक काल में पूरी तरह से निर्बाध नहीं थी। जैसे-जैसे समय बीता, समाज में पितृसत्ता का प्रभाव बढ़ा और महिलाओं की स्वतंत्रता पर अंकुश लगने लगा। हालांकि, शुरुआती वैदिक काल में महिलाएं अपने अधिकारों का प्रयोग पूरी आज़ादी से करती थीं और वे सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में सक्रिय भागीदार थीं।[vii]

सामान्य जीवन में भी स्त्रियाँ परिवार और समाज की रीढ़ मानी जाती थीं। वे घर की देखभाल करतीं, बच्चों की परवरिश करतीं और घर की व्यवस्था संभालती थीं, साथ ही वे समाज के धार्मिक और सांस्कृतिक कर्तव्यों में भी शामिल थीं। उनका सामाजिक सम्मान उनकी भूमिका की व्यापकता को दर्शाता है।

वैदिक काल की स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उस युग में वे आज के मुकाबले कहीं अधिक सम्मानित और स्वतंत्र थीं। वे शिक्षा, धर्म, सामाजिक जीवन और पारिवारिक जिम्मेदारियों में पूर्ण रूप से भागीदार थीं। यद्यपि समय के साथ कुछ परिवर्तन आए, फिर भी वैदिक काल की यह स्त्री सम्मान की परंपरा भारतीय समाज की सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण स्तंभ बनी।[viii]

उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन

1. पितृसत्तात्मक व्यवस्था का बढ़ना

उत्तरवैदिक काल में धीरे-धीरे पितृसत्तात्मक समाज की जड़ें गहरी होने लगीं। इसका मतलब यह था कि पुरुषों का परिवार और समाज में अधिकार बढ़ने लगा और महिलाओं की आज़ादी कम होने लगी। पहले जहाँ स्त्रियाँ समाज में अपने अधिकारों के साथ सक्रिय भूमिका निभाती थीं, वहीं अब उन्हें घर के अंदर सीमित कर दिया गया। पितृसत्ता ने परिवार के मुखिया को पुरुष माना और स्त्रियों को उसकी अधीनस्थ माना जाने लगा। इस बदलाव ने महिलाओं की स्थिति कमजोर कर दी और उन्हें समाज में कम स्वतंत्र बना दिया।[ix]

2. उपनयन संस्कार से वंचित होना

वैदिक काल में स्त्रियाँ भी उपनयन संस्कार प्राप्त करती थीं, जिससे वे वेदों का अध्ययन कर सकती थीं और धर्म के ज्ञान में भागीदार बनती थीं। लेकिन उत्तरवैदिक काल में यह अधिकार केवल पुरुषों तक सीमित हो गया। स्त्रियों को इस संस्कार से वंचित कर दिया गया, जिससे उनकी शिक्षा और धार्मिक गतिविधियों में भागीदारी बंद होने लगी। इसका मतलब था कि महिलाएँ आध्यात्मिक और शैक्षिक क्षेत्रों से दूर हो गईं और समाज में उनका प्रभाव कम होने लगा।[x]

3. बाल विवाह की शुरुआत

उत्तरवैदिक काल में बाल विवाह की प्रथा शुरू हुई, जिससे लड़कियाँ छोटी उम्र में ही विवाह बंधन में बंध जाती थीं। इससे उनका बचपन जल्दी खत्म हो जाता था और वे अपनी पढ़ाई या मन की इच्छाओं को पूरा नहीं कर पाती थीं। बाल विवाह ने महिलाओं की स्वतंत्रता को कम कर दिया और वे समाज में अपनी पसंद से जीवनसाथी चुनने में असमर्थ हो गईं। यह एक बड़ी सामाजिक समस्या थी जिसने महिलाओं के जीवन को सीमित किया।

4. पर्दा प्रथा का प्रचलन

इस दौर में पर्दा प्रथा भी समाज में फैलने लगी। इसके तहत महिलाओं को घर के अंदर ही रहने और बाहर पुरुषों से अलग रहने के लिए कहा गया। पर्दा प्रथा ने महिलाओं की सामाजिक गतिविधियों को कम कर दिया और वे सार्वजनिक जीवन से दूर होती चली गईं। इससे उनकी स्वाभाविक बातचीत और सामाजिक संपर्क भी घटने लगे। महिलाएँ अपनी पसंद और स्वाभाविक अधिकारों से दूर होती चली गईं।[xi]

5. धार्मिक ग्रंथों में स्त्री धर्म की सीमाएँ

उत्तरवैदिक काल के धार्मिक ग्रंथों ने महिलाओं के लिए कई नियम बनाए। इन्हें "स्त्री धर्म" कहा गया। इस धर्म के अनुसार महिलाओं की भूमिका मुख्य रूप से घर के कामकाज और पति की सेवा तक सीमित कर दी गई। उन्हें समाज के अन्य

क्षेत्रों में उतना अधिकार नहीं मिला जितना पुरुषों को था। कई बार उनकी इच्छा और स्वतंत्रता को अनदेखा कर दिया गया। यह नियम महिलाओं को अधिक दबाव में लाने वाले थे और उनके जीवन की सीमाएँ तय करते थे।[xii]

बौद्ध और जैन काल में स्त्रियों की स्थिति

बौद्ध और जैन धर्म के उदय ने भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति और उनके अधिकारों को एक नई दिशा दी। इस काल में महिलाओं के लिए धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में भागीदारी के नए रास्ते खुले, जो इससे पहले के कुछ सामाजिक बंधनों से अलग थे। सबसे पहले बात करें बौद्ध धर्म की, जहाँ **गौतम बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में स्थान दिया**, यद्यपि प्रारंभ में वे इसके लिए अनिच्छुक थे। बुद्ध ने शुरू में भिक्षुणी संघ बनाने को हिचक महसूस की क्योंकि उन्हें लगा कि इससे संघ की शक्ति कमजोर हो सकती है, लेकिन उनकी शिष्या महाप्रजापती गौतमी की आग्रह और समर्पण ने उन्हें इस फैसले पर आने के लिए प्रेरित किया। महाप्रजापती गौतमी पहली भिक्षुणी बनीं, जिन्होंने न केवल महिलाओं के लिए धार्मिक साधना का मार्ग प्रशस्त किया बल्कि इस कदम से यह भी साबित किया कि स्त्रियाँ भी आध्यात्मिक जीवन में पुरुषों के समान भागीदार हो सकती हैं। इस प्रकार, बौद्ध धर्म ने महिलाओं को धार्मिक जीवन में सक्रिय भूमिका निभाने का मौका दिया, जो उस समय समाज के लिए एक बड़ा बदलाव था।[xiii]

वहीं, जैन धर्म में भी स्त्रियों को समान रूप से धार्मिक जीवन में भागीदारी का अधिकार मिला। जैन धर्म के अनुयायी **स्त्रियों को साध्वियों के रूप में तपस्या में बराबर की भूमिका देते थे।** साध्वी बनने वाली महिलाएं कठोर तपस्या और अनुशासन का पालन करती थीं और उन्होंने धार्मिक समुदाय में सम्मानित स्थान पाया। जैन धर्म में स्त्रियों की यह भूमिका इस बात का प्रमाण थी कि धार्मिक साधना केवल पुरुषों तक सीमित नहीं थी। यहाँ स्त्रियों को भी ज्ञान, तपस्या और सामाजिक सुधार के कार्यों में सक्रिय रहने की अनुमति थी। इस प्रकार, जैन धर्म ने महिलाओं के आध्यात्मिक विकास को बढ़ावा दिया और समाज में उनकी स्थिति को मजबूत किया।

हालांकि इस काल में **शिक्षित स्त्रियों की संख्या सीमित थी**, फिर भी धार्मिक चेतना समाज के हर वर्ग में बढ़ रही थी। स्त्रियों की शिक्षा और धार्मिक गतिविधियों में भागीदारी बौद्ध और जैन धर्म के कारण बेहतर हुई। इससे महिलाओं में आध्यात्मिक और सामाजिक जागरूकता आई, जो उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाने में मददगार साबित हुई। धार्मिक ग्रंथों और संघों में महिलाओं की उपस्थिति ने समाज में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण में धीरे-धीरे सुधार लाना शुरू किया।[xiv]

इस काल में स्त्रियों की भूमिका केवल घर तक सीमित नहीं रही, बल्कि वे आध्यात्मिक गुरु, साध्वी और भिक्षुणी के रूप में समाज में अपना स्थान बनाने लगीं। यह बदलाव एक नई सोच का परिचायक था, जो महिलाओं को न केवल सामाजिक बल्कि धार्मिक जीवन में भी सम्मानित स्थान देना चाहता था। इस दौर की स्त्रियाँ भले ही संख्या में कम थीं, पर उनका प्रभाव धार्मिक और सामाजिक जीवन पर गहरा था।[xv]

कुल मिलाकर बौद्ध और जैन काल में स्त्रियों को मिलने वाला यह धार्मिक स्थान और सम्मान, उस समय के प्रचलित सामाजिक नियमों के विपरीत था। इससे पहले के कालों में जहाँ स्त्रियों को शिक्षा, धार्मिक ज्ञान और सार्वजनिक जीवन से दूर रखा जाता था, यहाँ उन्हें धार्मिक समुदाय में सक्रिय भागीदार माना गया। इससे न केवल स्त्रियों का सामाजिक दर्जा बढ़ा, बल्कि उनकी स्वतंत्रता और आत्मसम्मान को भी बढ़ावा मिला।[xvi]

यह काल भारतीय इतिहास में महिलाओं के अधिकारों और उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण पड़ाव साबित हुआ। बौद्ध और जैन धर्म ने न केवल महिलाओं के धार्मिक जीवन को महत्व दिया, बल्कि उनके सामाजिक विकास

का मार्ग भी प्रशस्त किया। इसके प्रभाव से भविष्य के युगों में महिलाओं के अधिकारों और समानता की लड़ाई को एक नई दिशा मिली।[xvii]

इस प्रकार, बौद्ध और जैन काल में स्त्रियों की स्थिति में सकारात्मक बदलाव देखने को मिला, जहाँ वे धार्मिक और सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में अधिक सक्रिय और सम्मानित बन सकीं। यह काल स्त्री अधिकारों के विकास का एक अहम अध्याय माना जाता है, जिसने भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका को नयी पहचान दी।[xviii]

मौर्य और गुप्त काल में स्त्रियाँ

भारत का मौर्य और गुप्त काल ऐतिहासिक दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण रहा है। इन दोनों कालों में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण से बड़े बदलाव हुए, जिनका सीधा असर स्त्रियों की स्थिति पर भी पड़ा। जहाँ मौर्य काल में कुछ क्षेत्रों में स्त्रियों की सक्रिय भूमिका दिखाई देती है, वहीं गुप्त काल में उनकी स्वतंत्रता पहले से और अधिक सीमित होती चली गई।

मौर्य काल (लगभग 322 ई.पू. से 185 ई.पू.) में चाणक्य द्वारा रचित **'अर्थशास्त्र'** जैसे ग्रंथों में स्त्रियों की भूमिका पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। चाणक्य ने स्त्रियों को केवल भावनात्मक या घरेलू इकाई के रूप में नहीं, बल्कि **आर्थिक इकाई के रूप में** देखा। इसका अर्थ यह है कि उस समय महिलाएँ केवल घर संभालने तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे उत्पादन, सेवाओं और व्यापार जैसे क्षेत्रों में भी योगदान दे रही थीं। यह बात उस समय की सामाजिक सोच को दर्शाती है कि स्त्रियाँ समाज की आर्थिक संरचना में भी महत्त्वपूर्ण थीं।[xix]

राजनीतिक दृष्टि से भी मौर्य काल में स्त्रियाँ पूरी तरह उपेक्षित नहीं थीं। **चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में कुछ स्त्रियाँ गुप्तचरों (जासूसों)** की भूमिका में कार्यरत थीं। यह तथ्य इस बात की पुष्टि करता है कि महिलाएँ शासन और सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी अपनी भूमिका निभा रही थीं। हालांकि, इन भूमिकाओं को आमतौर पर गोपनीय रखा गया, लेकिन फिर भी यह स्पष्ट होता है कि मौर्य शासन में स्त्रियाँ समाज के केवल सीमित दायरे तक ही नहीं थीं।[xx]

अब बात करें **गुप्त काल** (लगभग 320 ई. से 550 ई.) की, तो यह काल मौर्य काल के बाद आया और इसे 'भारत का स्वर्ण युग' भी कहा जाता है। लेकिन स्त्रियों के दृष्टिकोण से देखें तो यह काल **ब्राह्मणवादी परंपराओं की पुन: स्थापना का समय** था, जिसका सीधा प्रभाव महिलाओं की स्वतंत्रता और सामाजिक स्थिति पर पड़ा। इस काल में स्त्रियों की भूमिका को धार्मिक नियमों और परंपराओं के माध्यम से एक बार फिर सीमित कर दिया गया।

गुप्त युग में **पर्दा प्रथा, सती प्रथा और बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं** का विस्तार हुआ। पर्दा प्रथा के चलते महिलाओं को सार्वजनिक जीवन से दूर रखा जाने लगा। वे सामाजिक आयोजनों, धार्मिक अनुष्ठानों और शिक्षा के अवसरों से कटती चली गईं। **सती प्रथा**, जिसमें पति की मृत्यु के बाद स्त्रियों को उसकी चिता में जलने के लिए बाध्य किया जाता था, एक अमानवीय परंपरा के रूप में सामने आई। इस प्रथा ने स्त्री के जीवन के मूल्य को पुरुष से जोड़कर देखना शुरू कर दिया।

इसके साथ ही **बाल विवाह** की प्रथा भी गहराने लगी, जिससे लड़कियों की शिक्षा और मानसिक विकास पर गंभीर प्रभाव पड़ा। छोटी उम्र में विवाह कर देना न केवल उनके अधिकारों का हनन था, बल्कि उनके स्वास्थ्य और स्वतंत्रता के लिए भी घातक सिद्ध हुआ।[xxi]

शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भी स्त्रियों की भागीदारी सीमित हो गई। वैदिक काल में जहाँ महिलाएँ वेदों का अध्ययन करती थीं और धार्मिक बहसों में हिस्सा लेती थीं, वहीं गुप्त काल में शिक्षा का अधिकार धीरे-धीरे केवल उच्च वर्ग के पुरुषों तक सीमित हो गया। स्त्रियों को पढ़ाई-लिखाई की बजाय घरेलू कर्तव्यों और धार्मिक रीति-रिवाजों तक बाँध दिया गया।

कुछ अपवाद स्वरूप राजकुमारियों या कुलीन घरों की स्त्रियों को सीमित शिक्षा दी जाती थी, लेकिन सामान्य स्त्रियों के लिए यह लगभग असंभव हो गया था।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गुप्त काल में स्त्रियों की स्थिति एक बार फिर पीछे चली गई। जहाँ मौर्य काल में वे राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों में शामिल हो रही थीं, वहीं गुप्त काल में उन पर सामाजिक और धार्मिक बंधनों की पकड़ मजबूत हो गई।[xxii]

सांस्कृतिक और साहित्यिक योगदान में स्त्रियों की भूमिका

भारतीय इतिहास में स्त्रियों का योगदान केवल सामाजिक और पारिवारिक सीमाओं तक ही नहीं रहा, बल्कि उन्होंने संस्कृति, साहित्य, कला और धर्म जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी है। विशेष रूप से प्राचीन भारत में, जहाँ स्त्रियाँ विभिन्न सामाजिक बंधनों के बावजूद अपनी प्रतिभा से समाज को समृद्ध करती रहीं। उनके इस योगदान ने न केवल उस युग की सांस्कृतिक पहचान को गढ़ा, बल्कि भारतीय सभ्यता को भी गहराई प्रदान की।

1. साहित्य में स्त्रियों का योगदान

प्राचीन भारतीय **संस्कृत साहित्य** में कई ऐसी विदुषी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने काव्य, दर्शन और शास्त्रों में अपना योगदान दिया। इनमें **महादेवी**, **भानुमती**, **गार्गी**, **मैत्रेयी**, **लोपामुद्रा** जैसे नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये महिलाएँ न केवल ज्ञान में पारंगत थीं, बल्कि उन्होंने ब्रह्मविद्या, तर्क, और काव्रचना में भी पुरुषों के समकक्ष स्थान प्राप्त किया।महादेवी एक प्रख्यात विदुषी के रूप में जानी जाती हैं जिन्होंने साहित्य और दर्शन में गहरी रुचि ली। भानुमती का उल्लेख कविताओं और शास्त्रों के अध्ययन में मिलता है। गार्गी और मैत्रेयी जैसे उदाहरण वेदों में भी देखने को मिलते हैं, जहाँ वे विद्वानों से दार्शनिक संवाद करती हैं। ये उदाहरण इस बात का प्रमाण हैं कि स्त्रियाँ केवल श्रोता नहीं थीं, बल्कि विचार-विमर्श की पूर्ण प्रतिभागी थीं।

2. कला और संगीत में स्त्रियों की भागीदारी

प्राचीन काल में स्त्रियों ने **संगीत**, **नृत्य**, और **चित्रकला** जैसे कलात्मक क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। मंदिरों की दीवारों पर की गई चित्रकारी, नृत्य मुद्रा में प्रस्तुति देती अप्सराएँ, और संगीत शास्त्रों में स्त्री कलाकारों का वर्णन इस बात की पुष्टि करता है कि स्त्रियाँ भारतीय कला परंपरा की मूल आत्मा थीं। नाट्यशास्त्र जैसे ग्रंथों में नर्तकियों और गायिकाओं का वर्णन बड़े सम्मान से किया गया है। दरबारों में संगीत और नृत्य प्रस्तुत करने वाली महिलाएँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं थीं, बल्कि वे शास्त्रीय कलाओं की ज्ञाता थीं। उनके पास संगीत की गंभीर समझ, ताल और लय की परिपक्वता और भाव-प्रदर्शन की बारीकी होती थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों की भूमिका सांस्कृतिक वातावरण के निर्माण में अत्यंत महत्वपूर्ण थी।[xxiii]

3. कामसूत्र में स्त्री की छवि

वात्स्यायन द्वारा रचित 'कामसूत्र' जैसे ग्रंथों में स्त्री को केवल सौंदर्य की मूर्ति नहीं, बल्कि **कला, प्रेम और श्रृंगार की ज्ञाता** के रूप में चित्रित किया गया है। कामसूत्र में स्त्री को संगीत, नृत्य, चित्रकला, वार्तालाप, प्रेम-कला, और भाव-प्रदर्शन में दक्ष बताया गया है। इसमें उल्लेख है कि एक शिक्षित स्त्री को 64 कलाओं में पारंगत होना चाहिए, जिससे उसकी सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका समृद्ध हो सके। यह ग्रंथ इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियों की भूमिका केवल पारिवारिक जीवन में सीमित नहीं थी, बल्कि वे सामाजिक सौंदर्य, प्रेम, और कलात्मकता की वाहक थीं। वात्स्यायन ने स्पष्ट रूप से स्त्री

को एक बौद्धिक, संवेदनशील और कलात्मक व्यक्तित्व के रूप में देखा है, न कि केवल एक भोग्या के रूप में। यह दृष्टिकोण उस युग की परिपक्व सोच को दर्शाता है।[xxiv]

4. धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजनों में भागीदारी

स्त्रियाँ धार्मिक आयोजनों, यज्ञों, व्रतों और त्योहारों में भी सक्रिय भागीदारी निभाती थीं। उनके बिना इन धार्मिक कार्यों की पूर्णता मानी ही नहीं जाती थी। कई बार स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी बनकर धार्मिक उपदेश भी देती थीं। विशेष रूप से लोपामुद्रा और मैत्रेयी जैसी स्त्रियों ने धार्मिक ग्रंथों के निर्माण में अपना योगदान दिया। इन महिलाओं ने यह सिद्ध किया कि धर्म केवल पुरुषों का विषय नहीं है, बल्कि स्त्रियाँ भी इस क्षेत्र में गंभीर भूमिका निभा सकती हैं। धार्मिक शिक्षा, आध्यात्मिक चर्चा और दर्शन जैसे गंभीर विषयों में स्त्रियाँ उसी आत्मविश्वास के साथ सम्मिलित होती थीं, जैसे पुरुष विद्वान।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति को कालानुक्रमिक रूप से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि समय के साथ स्त्रियों की भूमिका, स्वतंत्रता और सामाजिक प्रतिष्ठा में काफी उतार-चढ़ाव आए। इस शोधपत्र में वैदिक काल से लेकर गुप्त काल तक स्त्रियों की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थिति का विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन न केवल ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है, बल्कि यह आज के स्त्री विमर्श को समझने के लिए भी एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है।

वैदिक काल, जिसे भारतीय संस्कृति का स्वर्ण युग भी कहा जाता है, स्त्रियों के लिए अपेक्षाकृत स्वतंत्रता और सम्मान का काल था। इस समय स्त्रियाँ शिक्षित थीं, वेदों का अध्ययन करती थीं, यज्ञों में भाग लेती थीं और अपने विचारों को खुलकर व्यक्त करती थीं। मैत्रेयी, गार्गी, लोपामुद्रा जैसी विदुषियों का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियाँ केवल घरेलू जीवन तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे समाज के बौद्धिक विमर्श में भागीदार थीं। वे धर्म और दर्शन में पुरुषों के समान विचार प्रस्तुत करती थीं, जो दर्शाता है कि उस समय लिंग आधारित भेदभाव अपेक्षाकृत कम था।[xxv]

परंतु **उत्तरवैदिक काल** में पितृसत्ता की जड़ें धीरे-धीरे गहरी होने लगीं। उपनयन संस्कार से स्त्रियों को वंचित किया गया, शिक्षा के अवसर सीमित होने लगे और बाल विवाह जैसी कुप्रथाएँ उभरने लगीं। पर्दा प्रथा ने महिलाओं को सामाजिक जीवन से अलग कर दिया। धार्मिक ग्रंथों में स्त्रियों के लिए अलग 'स्त्री धर्म' की व्याख्या होने लगी, जिसने उन्हें एक सीमित सामाजिक भूमिका में बाँध दिया। इस काल में स्त्रियों की स्थिति वैदिक काल की तुलना में काफी नीचे गिरने लगी।[xxvi]

बौद्ध और जैन काल ने स्त्रियों के लिए एक नई आशा की किरण प्रस्तुत की। यद्यपि गौतम बुद्ध आरंभ में स्त्रियों को संघ में स्थान देने के पक्ष में नहीं थे, लेकिन महाप्रजापती गौतमी के आग्रह पर उन्होंने भिक्षुणी संघ की स्थापना की। इससे स्त्रियों को धार्मिक जीवन में भागीदारी का अवसर प्राप्त हुआ। जैन धर्म में भी स्त्रियाँ साध्वियों के रूप में तपस्या और साधना में भाग लेने लगीं। इस काल में भले ही शिक्षित स्त्रियों की संख्या सीमित रही, लेकिन धार्मिक चेतना और आत्मिक विकास की दिशा में स्त्रियाँ आगे बढ़ीं।

मौर्य काल में स्त्रियों को कुछ हद तक राजनीतिक और आर्थिक भूमिका में देखा गया। चाणक्य के अर्थशास्त्र में स्त्रियों को एक आर्थिक इकाई के रूप में वर्णित किया गया, और कुछ स्त्रियाँ गुप्तचरों की भूमिका में भी दिखी। लेकिन **गुप्त काल**, जिसे अक्सर भारत का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है, स्त्रियों के लिए वास्तव में एक 'अंधकार युग' बनता गया। इस काल में ब्राह्मणवादी परंपराओं का पुनरुत्थान हुआ और स्त्रियों पर सामाजिक प्रतिबंध और अधिक कठोर हो गए। पर्दा प्रथा, सती

प्रथा और बाल विवाह जैसी कुप्रथाएँ व्यापक रूप से प्रचलन में आईं। शिक्षा और साहित्य में उनकी भागीदारी लगभग नगण्य हो गई।

इसके बावजूद, स्त्रियाँ सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सफल रहीं। संस्कृत साहित्य में कई विदुषी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने साहित्य और दर्शन में योगदान दिया। कामसूत्र जैसे ग्रंथों में स्त्रियों को सौंदर्य, प्रेम, और कला की जानकार बताया गया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि भले ही सामाजिक स्तर पर उन्हें सीमित कर दिया गया हो, लेकिन उनके भीतर की कला, संवेदना और सृजनात्मकता को पहचाना गया। संगीत, नृत्य, चित्रकला और धार्मिक आयोजनों में स्त्रियों की भागीदारी उस समय की सांस्कृतिक समृद्धि को दर्शाती है।[xxvii]

कुल मिलाकर, प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति स्थिर नहीं थी, बल्कि वह समय, सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक प्रभाव और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही। जहाँ एक ओर वैदिक काल में स्त्रियाँ शिक्षा, धर्म और समाज में सक्रिय थीं, वहीं उत्तरवैदिक और गुप्त काल में उन्हें विभिन्न कुरीतियों और सामाजिक बंधनों में बाँध दिया गया। फिर भी, स्त्रियों ने हर काल में किसी न किसी रूप में अपनी पहचान बनाए रखी, चाहे वह विद्वता के रूप में हो, कलात्मकता के रूप में या फिर आध्यात्मिक साधना के रूप में।[xxviii]

आज जब हम स्त्री सशक्तिकरण की बात करते हैं, तो यह आवश्यक है कि हम अपने अतीत से सीखें। यह समझना ज़रूरी है कि भारतीय संस्कृति की जड़ें ऐसी परंपराओं में भी रही हैं जहाँ स्त्रियों को सम्मान, ज्ञान और स्वतंत्रता दी गई थी। इसलिए वर्तमान समाज में महिलाओं को उनके समग्र अधिकार, सम्मान और अवसर प्रदान करना केवल सामाजिक उत्तरदायित्व नहीं, बल्कि ऐतिहासिक न्याय भी है।

अंततः यह शोध स्पष्ट करता है कि स्त्रियाँ केवल इतिहास की दर्शक नहीं थीं, बल्कि उसकी सक्रिय निर्माता थीं। उनके योगदान को स्वीकार करना, उन्हें सही स्थान देना और उनकी भूमिका को नए संदर्भों में पुनर्परिभाषित करना आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस शोध का उद्देश्य भी यही है कि हम अपने इतिहास की उस आधी आबादी की आवाज़ को फिर से सुने और उनके योगदान को समाज की मुख्यधारा में स्थान दें।[xxix]

संदर्भ सूची

1-अरोड़ा, सुधा। (2009)। आम औरत और ज़िन्दा सवाल। सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या – 36-44

2-पुष्पा, मैत्रेयी। (2009)। खुली खिड़कियां। सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या – 101-109

3-शर्मा, नासिरा। (2014)। औरत के लिए औरत। सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या – 77-84

4-शर्मा, क्षमा। (2016)। स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या – 49-55

5-मालती, के. एम. (2017)। स्त्री विमर्श: भारतीय परिप्रेक्ष्य। वाणी प्रकाशन, दिल्ली – पृष्ठ संख्या – 91-108

6-शर्मा, मालती। (1990)। वैदिक संहिताओं में नारी। शोध प्रबन्ध, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी – पृष्ठ संख्या – 112-129

7-की स्थिति का समाजशास्त्र। जर्नल ऑफ एडवांसेज एंड स्कॉलरली रिसर्चेस इन एलाइड एजुकेशन, 19(4), 71-78 – पृष्ठ संख्या – 71-78
8-सिन्हा, जया एवं यादवेंदु, विनोद कुमार। (2022)। प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक भारत में महिलाओं की स्थिति का समाजशास्त्र। जर्नल ऑफ एडवांसेज एंड स्कॉलरली रिसर्चेस इन एलाइड एजुकेशन, 19(4), 71-78 – पृष्ठ संख्या – 71-78
9-श्रीवास्तव, गरिमा। (2015)। नवजागरण, स्त्री प्रश्न और आचरण पुस्तकें। उत्तर महिला पत्रिका – पृष्ठ संख्या – 73-80
10-नीतू, डॉ.। (2015)। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति और महिला सशक्तिकरण। इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ मैनेजमेंट सोशियोलॉजी एंड ह्यूमैनिटीज, 6(5), 359-364 – पृष्ठ संख्या – 359-364
11-शर्मा, सुशील कुमार। (2017)। स्त्री विमर्श। हिन्दीकुंज – पृष्ठ संख्या – 14-22
12-मुखर्जी, सुपर्णा। (2017)। स्त्री सशक्तिकरण की चुनौतियाँ: आर्थिक असमर्थता, लिंग भेद और हिंसा। साहित्य कुंज – पृष्ठ संख्या – 60-66
13-मेखा। (2018)। भारतीय संदर्भ में नारी सशक्तिकरण व विश्लेषण। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च – पृष्ठ संख्या – 88-94
14-कुमार, राहुल। (2017)। प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण: ऋग्वैदिक काल से गुप्त काल तक। सोशल हिस्ट्री ऑफ इंडियन सोसाइटी रिसर्च जर्नल, पाण्डुलिपि संख्या SHISRRJ22124 – पृष्ठ संख्या – 42-51
15-पंवार, कौशल। (2017)। शूद्रा: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण से)। स्त्रीकाल – पृष्ठ संख्या – 18-25
16-कन्नौजिया, शिवानी। (2018)। स्त्री चिन्तन में स्त्रियाँ और श्रम। अपनी माटी – पृष्ठ संख्या – 33-39
17-सिंह, विजेंद्र प्रताप। (2016)। भारतीय स्त्रियों की दशा एवं दिशा का समुचित आख्यान: 'वेदबुक से फेसबुक तक स्त्री'। अनहद कृति, अंक 15 – पृष्ठ संख्या – 57-63
18-सोमकुवर, व्ही. जी. (2018)। प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति का ऐतिहासिक अध्ययन (सिंधु सभ्यता से बारहवीं शताब्दी तक)। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिस्ट्री, खंड 4(1), 05-07 – पृष्ठ संख्या – 05-07
19-कात्यायनी। (1997)। दुर्गद्वार पर दस्तक। परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ – पृष्ठ संख्या – 59-66
20-खेतान, प्रभा। (2014)। बाज़ार के बीच: बाज़ार के खिलाफ, भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या – 120-128
21-सिन्हा, मृदुला। (2009)। मात्र देह नहीं है औरत। सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या – 98-106
22-गुप्ता, रमणिका। (2014)। स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास। सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या – 139-147
23-शर्मा, ऋषभ देव। (2016)। समकाल से मुठभेड़। साहित्य कुंज – पृष्ठ संख्या – 55-60

24-तिवारी, सुरेन्द्र (संपादक)। (2016)। बीसवीं सदी की महिला कथाकारों की कहानियाँ। साहित्य कुंज – पृष्ठ संख्या – 90-101
25-ब्राउन, लुइज़। (2016)। यौन दासियाँ: एशिया का सेक्स बाज़ार (अनुवाद: कल्पना वर्मा)। साहित्य कुंज – पृष्ठ संख्या – 151-160
26-शर्मा, ऋषभ देव। (2016)। संपादकीयम्। साहित्य कुंज – पृष्ठ संख्या – 11-13
27-श्रीवास्तव, गरिमा। (2015)। अथ सवर्ण स्त्री प्रति-आख्यान। हिंदी समय – पृष्ठ संख्या – 67-73
28-कुमार, राधा। (2014)। स्त्री संघर्ष का इतिहास। वाणी प्रकाशन – पृष्ठ संख्या – 134-145
29-जोशी, गोपा। (2015)। भारत में स्त्री असमानता। हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय – पृष्ठ संख्या – 48-56